कारी चौधरी

बनाम

मोस्मात सीता देवी एवं अन्य

11 दिसंबर, 2001

[के.टी. थॉमस एवं एस.एन. फुकन, न्यायामूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: धारा 154, 173 (2) और (8)।

दंड संहिता, 1860 धारा 18, 211, 302/34।

प्राथमिकी — दो भिन्न प्राथमिकियों का दर्ज किया जाना — अनुज्ञेयता — सास द्वारा दर्ज प्राथमिकी — प्रतिवेदन कि बहू को कुछ व्यक्तियों द्वारा मार डाला गया — अन्वेषण — पुलिस द्वारा यह पाया जाना कि सास द्वारा दिया गया अभिकथन असत्य था — पुलिस द्वारा दंडाधिकारी को प्रतिवेदन भेजा जाना — सास के विरुद्ध एक अन्य प्राथमिकी का पंजीकरण — विधिमान्यता — अभिनिर्धारित, अन्वेषण अभिकरण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) *के अंतर्गत प्रतिवेदन भेजने के बावजूद किसी अपराध के संबंध में आगे अन्वेषण करने से नहीं रोका जाता।*

उत्तरदाता सं. 1 ने एक प्राथमिकी दर्ज कराई जिसमें कहा गया कि दिनांक 27.6.1998 को बाहर के कुछ व्यक्ति उसकी बहू के शयनकक्ष में घुस आए और उसकी गला घोंटकर हत्या कर दी। अन्वेषण के दौरान पुलिस ने पाया कि उत्तरदाता द्वारा दिया गया अभिकथन असत्य था और यह हत्या उत्तरदाता सं. 1 तथा उसकी अन्य बहू द्वारा रची गई षड्यंत्र के अनुसरण में की गई थी। परिणामस्वरूप पुलिस ने दिनांक 30.11.1998 को दंडाधिकारी को एक प्रतिवेदन भेजा और एक अन्य प्राथमिकी पंजीकृत की। उत्तरदाता की यह विरोध परिवाद कि

दिनांक 30.11.1998 का पुलिस प्रतिवेदन पूर्णतः असंधार्य है और प्रथम प्राथमिकी में नामित व्यक्ति ही वास्तविक अपराधी हैं, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा अस्वीकार कर दी गई। प्रथम उत्तरदाता द्वारा दाखिल पुनरीक्षण उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया और उच्च न्यायालय ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 202 के अंतर्गत जांच करने का निर्देश दिया। तत्पश्चात किए गए अन्वेषण के आधार पर उत्तरदाता, उसकी दो अन्य बहुओं, पुत्र तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध भा.दं.सं. की धारा 302 को धारा 34 के साथ पठित करते हुए आरोप विरचित किए गए। उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय में आवेदन किया और उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर आपराधिक कार्यवाही अभिखंडित कर दी कि प्रथम उत्तरदाता के विरुद्ध दोहरा संकट की स्थिति है। मृतका के भाई ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष अपील दाखिल की। उत्तरदाता की ओर से यह तर्क दिया गया कि एक बार प्रथम प्राथमिकी के अंतर्गत आरंभ की गई कार्यवाही अंतिम प्रतिवेदन के साथ समाप्त हो जाने के पश्चात पुलिस को द्वितीय प्राथमिकी पंजीकृत करने का कोई अधिकार नहीं था।

अपील स्वीकार करते हुए और आक्षेपित आदेश अपास्त करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1. एक ही वाद के संबंध में एक ही आरोपी के विरुद्ध दो प्राथमिकियाँ नहीं हो सकतीं। किंतु जब एक ही घटना के संबंध में प्रतिद्वंद्वी अभिकथन हों, तो वे सामान्यतः दो भिन्न प्राथमिकियों का रूप ले लेते हैं और उसी अन्वेषण अभिकरण द्वारा दोनों के अंतर्गत अन्वेषण किया जा सकता है। इससे भी परे, न्यायालय द्वारा पश्चवर्ती प्राथमिकी के रूप में वर्णित प्रस्तुत प्रतिवेदन को न्यायालय को प्रस्तुत उस सूचना के रूप में माना जाना चाहिए जिसमें पुलिस द्वारा अन्वेषण के दौरान की गई नई खोज के बारे में बताया गया है कि पूर्व प्राथमिकी में नामित न होने वाले व्यक्ति ही वास्तविक अपराधी हैं। केवल इस आधार पर कि पूर्व प्राथमिकी में अंतिम प्रतिवेदन दाखिल किया जा चुका है, उक्त

कार्यवाही को अभिखंडित करना, कम से कम, अत्यंत तकनीकी दृष्टिकोण है। प्रत्येक अन्वेषण का अंतिम उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या आरोपित अपराध किए गए हैं और यदि हाँ, तो उन्हें किसने किया है। [592-ग-ङ]

1.2. इससे भी परे, अन्वेषण अभिकरण पूर्व अवसर पर धारा 173 की उपधारा (2) के अंतर्गत प्रतिवेदन अग्रेषित करने के बावजूद किसी अपराध के संबंध में आगे अन्वेषण करने से नहीं रोका जाता। यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173(8) से स्पष्ट है। [592-च]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील सं. 1280/2001।

पटना उच्च न्यायालय के आपराधिक विविध सं. 28795/1998 में दिनांक 28.3.2001 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से ए. शरण, एस. चंद्रशेखर, श्री प्रकाश और इरशाद अहमद।

उत्तरदाता सं. 1, 3-5 की ओर से अंभोज कुमार सिन्हा।

उत्तरदाता सं. 8-9 की ओर से बी.बी. सिंह।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदत किया गया:

न्यायामूर्ति थॉमस अनुमति प्रदान की गई।

एक सास एक मामले में अपनी बहू की सदोष मानव वध की परिवादिनी के रूप में उपस्थित हुई, किंतु अंततः वह उक्त हत्या की अपराधी अभियुक्त के रूप में परिवर्तित कर दी गई। उच्च न्यायालय ने उसकी प्रथम परिवाद के आधार पर उसके विरुद्ध वाद को अब रोक दिया है। यह मृतका के भाई को अस्वीकार्य था और इसीलिए वह उच्च न्यायालय के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष आया है।

सुगनिया देवी वह दुर्भाग्यशाली पीड़िता है जिसकी दिनांक 27.6.1988 की रात को हत्या कर दी गई। अपनी मृत्यु से लगभग 10 वर्ष पूर्व उसका विवाह राम जतन चौधरी से हुआ था, जो प्रथम उत्तरदाता सीता देवी के चार पुत्रों में से एक था। वह निःसंतान रही। अपनी मृत्यु के अगले दिन प्रथम उत्तरदाता सीता देवी ने बाबू बरही थाने में यह अभिकथन करते हुए प्राथमिकी दर्ज कराई कि बाहर के कुछ व्यक्ति सुगनिया देवी के शयनकक्ष में घुस आए और उसकी गला घोंटकर हत्या कर दी। उक्त परिवाद के आधार पर प्राथमिकी सं. 135 पंजीकृत की गई और तत्पश्चात अन्वेषण प्रारंभ किया गया।

अन्वेषण की प्रगति के दौरान पुलिस ने यह राय बनाई कि सुगनिया देवी की हत्या प्रथम उत्तरदाता द्वारा प्राथमिकी में दिए गए अभिकथन से पूर्णतः भिन्न रीति से हुई थी। पुलिस ने पाया कि यह हत्या उसकी सास सीता देवी तथा उसकी अन्य बहुओं एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा रची गई षड्यंत्र के अनुसरण में की गई थी। अतः पुलिस ने दिनांक 30.11.1998 को न्यायालय को एक प्रतिवेदन भेजा जिसमें कहा गया कि प्राथमिकी सं. 135 में लगाए गए आरोप असत्य हैं। पुलिस ने न्यायालय को यह सूचित करते हुए कि उन्होंने प्राथमिकी सं. 209/89 के रूप में एक अन्य प्राथमिकी पंजीकृत कर, अन्वेषण जारी रखा।

प्रथम उत्तरदाता सीता देवी ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष एक विरोध परिवाद दाखिल की जिसमें यह अभिकथन किया गया कि दिनांक 30.11.1998 का पुलिस प्रतिवेदन पूर्णतः असंधार्य है और यह दोहराया गया कि प्राथमिकी सं. 135 में नामित व्यक्ति ही वास्तविक अपराधी हैं। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने अपने दिनांक 28.8.1999 के आदेश द्वारा विरोध परिवाद अस्वीकार कर दी। प्रथम उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल पुनरीक्षण में उक्त आदेश को चुनौती दी। उक्त पुनरीक्षण दिनांक 7.2.2000 को स्वीकार कर लिया गया और मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अंतर्गत जांच करने का निर्देश दिया गया।

पुलिस बल ने इस नई खोज पर अन्वेषण आगे बढ़ाया कि सुगनिया देवी की हत्या कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई थी और अंततः अन्वेषण पूर्ण करते हुए दिनांक 31.3.2000 को आरोप-पत्र दाखिल किया। उक्त आरोप-पत्र में प्रथम उत्तरदाता सीता देवी, उसकी दो अन्य बहुओं, उसके पुत्र राम आशीष चौधरी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों को भा.दं.सं. की धारा 302 को धारा 34 के साथ पठित करते हुए अपराध के लिए नामित किया गया। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जिनके समक्ष आरोप-पत्र दाखिल किया गया था, ने उक्त वाद को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया। तत्पश्चात, हमें बताया गया है, सत्र न्यायाधीश ने इस प्रकार नामित आरोपियों के विरुद्ध उपर्युक्त अपराध के लिए आरोप विरचित किया।

इसी बीच प्रथम उत्तरदाता ने उसके और अन्य के विरुद्ध दर्ज आपराधिक कार्यवाही अभिखंडित कराने के लिए उच्च न्यायालय में पुनः आवेदन किया। पटना उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने उसके तर्क को उचित माना और आक्षेपित निर्णय द्वारा आपराधिक कार्यवाही अभिखंडित कर दी। इस प्रकार अपीलकर्ता और अन्य आरोपी अब उक्त वाद में कोई विचारण किए बिना ही हत्या के आरोप से पूर्णतः मुक्त कर दिए गए हैं। उच्च न्यायालय के उस आदेश को अब इस न्यायालय में चुनौती दी गई है।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मार्ग इस आधार पर अपनाया कि अन्यथा प्रथम उत्तरदाता के विरुद्ध दोहरा संकट की स्थिति है। विद्वान न्यायाधीश का तर्क इस प्रकार है: जब पुलिस ने पूर्व प्रतिवेदन दाखिल करते हुए यह कहा कि प्राथमिकी सं. 135 में लगाए गए आरोप असत्य हैं, तो दंडाधिकारी ने उसके विरुद्ध भा.दं.सं. की धाराओं 188 और 211 के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लिया और दंडाधिकारी का वह आदेश अभिखंडित कर दिया गया था। एकल न्यायाधीश की निम्नलिखित टिप्पणी यह प्रकट करती है कि उन्होंने यह तर्क किस प्रकार आगे बढ़ाया:

> "एक बार जब झूठे वाद दर्ज करने की अनुशंसा और उसका संज्ञान किसी न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया हो, तब उसी आरोप पर आगे कार्यवाही की कोई गुंजाइश नहीं है, वह भी उस पुलिस अधिकारी द्वारा जो स्वयं को एक पक्षकार बना रहा है, जो दोहरा संकट के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"

दोनों ने कहा कि जिस आदेश द्वारा भा.दं.सं. की धाराओं 188 और 211 के अंतर्गत अपराधों का संज्ञान लिया गया था, वह वास्तव में एक भिन्न वाद से संबंधित था न कि उस वाद से जो प्राथमिकी सं. 135 को समाविष्ट करता था। तथापि प्रथम उत्तरदाता सीता देवी के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखने का प्रयास किया कि दंडाधिकारी का वह आदेश जो प्राथमिकी सं. 135 के वाद में पुलिस का अंतिम प्रतिवेदन स्वीकार करते हुए समाप्त हुआ था, वैसे भी अभिखंडित कर दिया गया था, और इसलिए पुलिस द्वितीय अंतिम प्रतिवेदन दाखिल नहीं कर सकती, चाहे वह अन्य आरोपियों के विरुद्ध ही क्यों न हो। इस संदर्भ में हम उस आदेश को उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं जो उच्च न्यायालय ने दंडाधिकारी की उस कार्यवाही के संबंध में पारित किया था जो दिनांक 28.8.1999 के आदेश द्वारा प्राथमिकी सं. 135 को समाविष्ट करने वाले वाद में पुलिस का प्रतिवेदन स्वीकार करते हुए समाप्त हुई थी। वह आदेश इस प्रकार पठित है:

> "दंडाधिकारी से अपेक्षित है कि वे परिवादिनी की सगंभीर अभिपुष्टि पर परीक्षण करें और तत्पश्चात विधि के अनुसार आगे कार्यवाही करें। विद्वान दंडाधिकारी ने प्रक्रिया का पालन किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है। तदनुसार दिनांक 28.8.1999 का आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है और विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल विरोध याचिका का विधि के अनुसार और उपर्युक्त की गई टिप्पणियों के प्रकाश में निपटान करें।"

उक्त तथ्यात्मक विकास का परिणाम यह है। प्राथमिकी सं. 135 में परिवादिनी सीता देवी को अपनी परिवाद पर अड़े रहने की अनुमति है, इस निष्कर्ष के बावजूद कि पुलिस उक्त परिवाद को असत्य मान चुकी है। किंतु न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह मार्ग पुलिस को सुगनिया देवी की हत्या के अपराध की अन्वेषण जारी रखने और उसकी हत्या के वास्तविक अपराधी के संबंध में अंतिम निष्कर्ष तक पहुँचने से निःशक्त नहीं कर सकता। पुलिस ने अपना अन्वेषण तभी पूर्ण किया जब दिनांक 31.3.2000 को प्रथम उत्तरदाता सीता देवी और अन्य के विरुद्ध आरोप-पत्र अंततः दाखिल किया गया। उक्त वाद का विधिक निर्णय किया जाना अनिवार्य है जिसके लिए सत्र न्यायालय द्वारा विचारण अपरिहार्य है।

विद्वान अधिवक्ता ने यह वैकल्पिक तर्क अपनाया कि एक बार प्राथमिकी सं. 135 के अंतर्गत आरंभ की गई कार्यवाही अंतिम प्रतिवेदन के साथ समाप्त हो जाने के पश्चात पुलिस को द्वितीय प्राथमिकी पंजीकृत करने और उसे प्राथमिकी 208 की संख्या देने का कोई अधिकार नहीं था। निश्चय ही विधिक स्थिति यह है कि एक ही वाद के संबंध में एक ही आरोपी के विरुद्ध दो प्राथमिकियाँ नहीं हो सकतीं। किंतु जब एक ही घटना के संबंध में प्रतिद्वंद्वी अभिकथन हों, तो वे सामान्यतः दो भिन्न प्राथमिकियों का रूप ले लेते हैं और उसी अन्वेषण अभिकरण द्वारा दोनों के अंतर्गत अन्वेषण किया जा सकता है। इससे भी परे, न्यायालय द्वारा प्राथमिकी सं. 208/1998 के रूप में वर्णित प्रस्तुत प्रतिवेदन को न्यायालय को प्रस्तुत उस सूचना के रूप में माना जाना चाहिए जिसमें पुलिस द्वारा अन्वेषण के दौरान की गई नई खोज के बारे में बताया गया है कि प्राथमिकी सं. 135 में नामित न होने वाले व्यक्ति ही वास्तविक अपराधी हैं। केवल इस आधार पर कि प्राथमिकी सं. 135 में अंतिम प्रतिवेदन दाखिल किया जा चुका है, उक्त कार्यवाही को अभिखंडित करना, कम से कम, अत्यंत तकनीकी दृष्टिकोण है। प्रत्येक अन्वेषण का अंतिम उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या आरोपित अपराध किए गए हैं और यदि हाँ, तो उन्हें किसने किया है।

इससे भी परे, अन्वेषण अभिकरण पूर्व अवसर पर धारा 173 की उपधारा (2) के अंतर्गत प्रतिवेदन अग्रेषित करने के बावजूद किसी अपराध के संबंध में आगे अन्वेषण करने से नहीं रोका जाता। यह संहिता की धारा 173(8) से स्पष्ट है।

इस प्रकार, किसी भी दृष्टिकोण से आक्षेपित आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता। अतः हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और आक्षेपित आदेश अपास्त करते हैं।

टी.एन.ए. अपील स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।